साधना और परिशुद्ध बुद्धि

स्वामी अखण्डानन्द द्वारा लिखित

सदियों से, महात्माजन यह सिखाते आए हैं कि सत्य के साधक के लिए बुद्धि की परिष्कृति या शुद्धिकरण परमावश्यक है। बुद्धि हमारे जीवन में केन्द्रीय भूमिका निभाती है — यह हमारे कर्मों को, हमारे दृष्टिकोणों व विचारों को निर्देशित करती है। समस्त सृष्टि के मूल में निहित ऐक्य पर मनन करने से जिसका विकास हुआ हो, वह 'परिशुद्ध' बुद्धि है।

हाल ही में, एक दिन शाम को, जब मैं श्री मुक्तानन्द आश्रम के परिसर में टहल रहा था तब मुझे साधना में बुद्धि की भूमिका का बहुत स्पष्ट अनुभव हुआ। मन्द-मन्द हवा चल रही थी तथा सूर्यास्त के रंगों से आकाश और भी अधिक व्यापक होता हुआ प्रतीत हो रहा था। मैंने अपने बाईं ओर नज़र डाली और पाया कि कुछ ही दूरी पर एक हिरन घास चर रहा है। मैं रुक गया कि कहीं वह जीव चौंक न जाए। उसने सिर उठाकर अपनी बड़ी-बड़ी भूरी आँखों से मुझे देखा।

मैंने भी हिरन की आँखों में देखा और उस बात का स्मरण किया जो श्रीगुरुमाई ने अपने एक प्रवचन में कही थी : यद्यपि प्राणियों की आँखों के अलग-अलग रूप-आकार होते हैं, फिर भी उन सभी आँखों में निहित चिति एक ही है।

गुरुमाई जी की सिखावनी को याद कर, मुझे गहन प्रशान्ति का अनुभव हुआ। मैं अब भी हिरन को देख रहा था, किन्तु मेरा बोध-क्षेत्र आन्तरिक रूप से, मेरी आँखों के *पीछे* स्थित एक स्थिर स्थान में विस्तृत हो गया। इस भोले जीव के सान्निध्य में चिति की जो झलक मुझे मिली थी, उसका रसास्वादन करते हुए, कुछ मिनट पश्चात् मैंने दोबारा टहलना शुरू किया।

अगले कुछ दिनों में, आश्रम-परिसर में मेरा सामना कुछ अन्य जीवों से हुआ — दो गिलहरियाँ, एक कार्डिनल पक्षी, एक मर्मर चिड़िया — जिन्हें देखकर क्षण भर के लिए मैं जागरूक हो उठा कि जो द्रष्टा मेरे नेत्रों से देख रहा है, वही पलटकर, उनकी आँखों के माध्यम से मुझे देख रहा है।

मैं सत्य से सम्पर्क साधने हेतु, भेद के परे देखने की गुरुमाई जी की सिखावनी का अभ्यास कर रहा था यानी मैं इस सिखावनी पर मनन कर रहा था, उसके बारे में अपनी समझ को और भी परिष्कृत कर रहा था, इसलिए क्षण भर के लिए ही सही, मैं बारम्बार इस ऐक्य की झलक पा सका। मुझे लगता है कि इस

संसार को श्रीगुरुमाई के प्रज्ञान की दृष्टि से देखते समय, अनेक सिद्धयोगियों को इसी प्रकार के अनुभव हुए होंगे।

गुरुमाई जी ने अक़्सर हमें यह सिखाया है कि ब्रह्माण्डीय परम सत्य का अनुभव करने हेतु, हमें सचेत रहना होगा, हमें जाग्रत होना होगा। गुरुमाई जी बताती हैं कि भारत के शास्त्रों में ऋषि-मुनि जीवात्मा के निद्रित होने का वर्णन करते हैं। इसका अर्थ है 'आध्यात्मिक रूप से निद्रा में होना' — उस तत्त्व के प्रति अज्ञानी व उससे अनभिज्ञ [अनजान] रहना जो अविकारी यानी अपरिवर्तनशील है, हमारे भीतर भी और इस ब्रह्माण्ड में भी।

जाग्रत होना तथा ज्ञान

निद्रित होना। कितनी सटीक उपमा है! हर प्रातः जब हम निद्रा से जागते हैं, तथा अपनी चिर-परिचित पहचानों व भूमिकाओं को पुनः ग्रहण कर लेते हैं तो हमारे सपनो का संसार विलीन हो जाता है। हमारी स्पष्ट अनुभूतियों और जाग्रत दुनिया के ठोस रूप के सामने, निद्रावस्था के समय का हमारा बोध सीमित होता है, यह स्पष्ट है। इस उपमा को ध्यान में रखने से हमें, सत्य के प्रति जाग्रत होने का गुरुमाई जी का जो आदेश है, उसे बेहतर रीति से समझने में मदद मिल सकती है।

और, सत्य के प्रति हम किस प्रकार जाग्रत होते हैं? हमसे कहा जा रहा है कि हम आध्यात्मिक दृष्टि से निद्रित रहने की अवस्था को त्याग दें जिसमें कि हमें अपने सच्चे स्वरूप का विस्मरण हो जाता है, साथ ही हमसे आध्यात्मिक जागृति की अवस्था में प्रवेश करने के लिए कहा जा रहा है, जोकि 'आध्यात्मिक ज्ञान' का एक अन्य नाम है। संस्कृत में, इस उच्चतर समझ को 'ज्ञान' कहा जाता है जिसे कई भिन्न स्तरों पर समझा जा सकता है।

अधिकांश सिद्धयोगी इस बात से अवगत हैं कि उन्हें इस अभिज्ञान की झलक मिलती रहती है कि जगत का मूल स्वरूप है, सत्य — सत्, चित् और आनन्द। बाद में हम इन अनुभवों का स्मरण कर सकते हैं, तथा गुरुमाई जी, बाबा जी व अन्य सिद्धजन की सिखावनियों का अध्ययन कर सकते हैं जो इस स्थिति में रहते हैं। ऐसा बोध, ऐसा अभिज्ञान जिसकी झलक हमें यदा-कदा मिलती है, तथा समस्त अनुभूतियाँ ज्ञान का ही रूप हैं। काश्मीर शैवमत के ऋषि, अभिनवगुप्त के अनुसार, अभिज्ञान [प्रत्यभिज्ञा] की ये झलकियाँ, ज्ञान की सर्वाधिक विस्तृत अवस्था अर्थात् आत्मसाक्षात्कार तक पहुँचने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, जिसमें हम उस एक परम सत्य की अनुभूति में प्रतिष्ठित हो जाते हैं जो हमारा व हमारे आस-पास

जो कुछ भी है, उसका मूल स्वरूप है। दूसरे शब्दों में, ज्ञान के ये समस्त रूप, हमारे अपने सत्स्वरूप के प्रति जागृति का ही एक भाग हैं।

ऋषि अभिनवगुप्त दो प्रकार के आध्यात्मिक ज्ञान के बारे में बताते हैं जो पूर्णतः जाग्रत होने के लिए आवश्यक हैं :

१. **पौरुष ज्ञान,** 'प्रत्यक्ष अथवा अन्तर्जात ज्ञान।' यह ज्ञान, व्यक्ति की आत्मा में निहित होता है और शक्तिपात दीक्षा नामक आध्यात्मिक दीक्षा द्वारा कृपा प्रदान कर, एक जिज्ञासु के अन्दर जाग्रत किया जाता है। यह आत्मबोध है जो विचार के स्तर के परे है। भले ही ध्यान के अनुशासित अभ्यास द्वारा पौरुष ज्ञान को सम्बल मिलता है, फिर भी यह हमारे सजग प्रयासों द्वारा नियन्त्रित नहीं होता, क्योंकि इस प्रकार का ज्ञान कृपा द्वारा उद्घाटित होता है।

२. **बौद्ध ज्ञान,** 'बुद्धि पर आधारित ज्ञान।' यह ज्ञान प्राप्त होता है, अद्वैत सत्य के विषय में सद्गुरु द्वारा प्रदान किए गए उपदेशों व शास्त्रों में दिए गए यथार्थ विवरणों पर मनन करने से, उनकी प्रतीति करने से तथा उनका अध्ययन करने से। निश्चित रूप से, यह पूर्ण रूप से हमारे नियन्त्रण में है, तथा हमारे स्वप्रयत्न पर निर्भर है।

अब हम इस दूसरे प्रकार के ज्ञान, बौद्धिक ज्ञान का परीक्षण करेंगे, कम से कम कुछ अंश में, क्योंकि यह ज्ञान का ऐसा रूप है जिसे विकसित करने का *निर्णय* हम ले सकते हैं।

बुद्धि क्या है?

मैं यह स्पष्ट करते हुए आरम्भ करता हूँ कि इस सन्दर्भ में 'बौद्धिक ज्ञान' का अर्थ क्या है। भारतीय दर्शनशास्त्रों में बताए गए विभिन्न मानसिक कार्यों को करने वाले हमारे मानसिक उपकरणों में से, बुद्धि वह भाग है जो तर्क करती है — जो समझती है, अन्तर बताती या निर्णय करती है और जो आन्तरिक व बाहरी, दोनों प्रकार के सभी अनुभवों का वर्गीकरण करती है। यह हमारी बुद्धि ही है जो हमें बताती है कि हमारे समक्ष खड़ा जानवर कुत्ता है, न कि मछली, मेढक या लोमड़ी।

मैं आपका ध्यान इस बात पर लाना चाहता हूँ कि हिरन की आँखों में मुझे सत्य का अभिज्ञान इसलिए हुआ क्योंकि मैं अपने श्रीगुरु की इस सिखावनी पर चिन्तन-मनन करता रहा था। यही नहीं, जैसे-जैसे बुद्धि अधिकाधिक परिष्कृत होती जाती है, यह और भी विश्वसनीय रूप से हमें उस दिशा में अग्रसर कर सकती है जो व्यावहारिक व आध्यात्मिक, दोनों ही प्रकार के जीवन में सर्वाधिक कल्याणकारी हो।

एक साधक होने के नाते, हमारे लिए महत्त्वपूर्ण रूप में बुद्धि ही परम सत्य और जो सत्य नहीं है उसके बीच, वास्तविक और जो वास्तववविक नहीं है उसके बीच तथा आत्मा और अनात्मा के बीच अन्तर कर सकती है। इसकी इसी क्षमता के कारण आध्यात्मिक पथ पर, सशक्त व शुद्ध बुद्धि अपरिहार्य होती है।

बौद्ध ज्ञान में वे तरीक़े शामिल हैं जिन्हें अपनाकर हम साधना में बुद्धि का प्रयोग करते हैं — इसके लिए हम सत्य के विषय में अपने विवेक को विकसित करते हैं तथा इस पर मनन करते हैं कि आत्मा के हमारे अपने अनुभवों द्वारा किस प्रकार हमारी सही समझ का प्रमाण मिलता है।

शैवग्रन्थों में से एक मौलिक शास्त्र, 'शिवसूत्र' के एक सूत्र में इसका ऐसा वर्णन किया गया है :

धीवशात्सत्त्वसिद्धिः ॥ ३.१२ ॥

बुद्धि की शक्ति द्वारा सत्त्व [विशुद्ध तत्त्व] अर्थात् आत्मा की प्राप्ति या सिद्धि होती है।[१]

धी — बुद्धि, समझ, अन्तर-दृष्टि
वशात् — [की] शक्ति द्वारा
सत्त्व — विशुद्ध तत्त्व या सत्य, अस्तित्व, सच्चा सार
सिद्धिः — अनुभूति या बोध, प्राप्ति

ध्यान दें कि संस्कृत शब्द, 'धी' का प्रयोग, 'बुद्धि' के लिए किया गया है।

शैवमत के ऋषि, क्षेमराज इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं, "व्यक्ति के बोध में [आत्मा के] सत्स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने में, बुद्धि सर्वाधिक कुशल है।"[२] बुद्धि, "सर्वाधिक कुशल" है क्योंकि यह देह से, ज्ञानेन्द्रियों से व भारतीय दर्शनशास्त्रों में बताए गए अन्य मानसिक उपकरणों से भी सूक्ष्म है। ये पहलू या उपकरण हैं, मनस् अर्थात् मन जोकि इन्द्रियों के संस्कारों का संग्रह करता है; तथा अहंकार जो किन्हीं विशिष्ट अनुभवों को हमारे साथ जोड़ देता है। इन सभी पहलुओं में से बुद्धि ही है जो एक ऐसी स्थिति में है कि वह आत्मा को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रतिबिम्बित कर सकती है।

इस व्याख्या में क्षेमराज जी आगे कहते हैं, "उस बुद्धि की शक्ति के माध्यम से, विशुद्ध तत्त्व या सत्य [सत्त्व] की प्राप्ति [सिद्धि] अथवा प्राकट्य होता है जो एक सूक्ष्म अन्तर-स्पन्द है और जिसका स्वरूप झिलमिलाता हुआ प्रकाश है।"[३] दूसरे शब्दों में, बुद्धि के विशुद्ध ज्ञान से ही हमें परमोच्च अनुभूति की प्रतीति होती है।

इसे समझने का एक तरीक़ा यह है कि हम ऐसा विचार करें कि बुद्धि हमारी सीमित सत्ता का एक पहलू है जो आत्मा के बहुत समीप है। इस समीपता के कारण, एक बार जब बुद्धि परिष्कृत — परिशुद्ध — हो जाती है तो वह एक दर्पण के समान कार्य करती है जो आत्मा के आलोक व आनन्द को प्रतिबिम्बित करती है। यहाँ 'परिशुद्ध' होने का अर्थ है, द्वैतभाव की शुद्धि होना।

अतः, 'परिशुद्ध बुद्धि' से शैव ऋषियों का तात्पर्य ऐसी बुद्धि से है जो परमात्मा व जगत के साथ हमारे ऐक्य की समझ व अनुभूति में लीन हो। इसके अतिरिक्त, वे यह भी कह रहे हैं कि एक बार जब हम बुद्धि को परिशुद्ध कर लेते हैं, हम सत्य के प्रति जाग्रत हो जाते हैं।

अपनी पुस्तक, *Nothing Exists That Is Not Shiva, [नथिंग एग्ज़िस्ट्स् दॅट इज़ नॉट शिव]* में बाबा मुक्तानन्द उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं, "जब बुद्धि, इस दृढ़ विश्वास में स्थिर हो जाती है कि समस्त वस्तुओं में अभेद या ऐक्य है, तब सत्त्व [सत्य] की सिद्धि हो जाती है।"[४]

यहाँ, बाबा जी उस प्रक्रिया के बारे में बताते हैं जिसके द्वारा बौद्धिक ज्ञान हमें सत्य की प्राप्ति या सिद्धि तक ले जाता है। जब हम बारम्बार श्रीगुरु की व शास्त्रों की इस सिखावनी पर मनन करते हैं कि एक ही आत्मा सभी प्राणियों व पदार्थों में व्याप्त है, तब बुद्धि, ऐक्य की अर्थात् सत्य की दिशा में स्थिरता से उन्मुख हो जाती है।

एक बार ऐसा हो जाने पर, हमारे अन्दर गहरे पैठी हुईं द्वैत की, आत्मा से हमारे अलगाव की धारणाएँ धीरे-धीरे विलीन होने लगती हैं और सत्य यानी चिति के साथ हमारी एकात्मता के विचार उनका स्थान ले लेते हैं। अन्ततः, ये विचार भी उस निर्विकल्प ऐक्य के अद्भुत बोध में विलीन हो जाते हैं।

अपनी बुद्धि का उपयोग कैसे करें

अपने कई प्रवचनों व पुस्तकों में, गुरुमाई जी उस एक तत्त्व को, उस एक सत्य को अनावृत करने में हमारा मार्गदर्शन करती हैं जो नाम व रूपों के समस्त प्रत्यक्ष भेदों के मूल में है।

अब स्वयं से पूछें : "गुरुमाई जी के निर्देश का पालन करने हेतु मैं किन तरीक़ों से अपनी बुद्धि का उपयोग कर सकता हूँ?"

उदाहरण के लिए, आप जगत के साथ अपने ऐक्य के बारे में विचार करने का प्रयास कर सकते हैं। आप उस एक दिव्य शक्ति की अनुभूति करने का अभ्यास कर सकते हैं जो आपके अन्दर विद्यमान है, उन लोगों में है जिनसे आप मिलते हैं, प्रकृति की उन शक्तियों व रूपों में विद्यमान है जिनका आप सामना

करते हैं तथा उस हर चीज़ में भी विद्यमान है जिसे आप देखते, सुनते, सूँघते, स्पर्श करते हैं या जिसका स्वाद लेते हैं।

ऋषि अभिनवगुप्त, ऐक्य के इन विचारों को 'शुद्ध विकल्प' कहते हैं क्योंकि इस प्रकार के विचार, सटीक रूप से परम सत्य को दर्शाते हैं।[५] 'शुद्ध विकल्प' में ऐक्य के इस प्रकार के विचार शामिल हैं — "मैं आत्मा हूँ," और "परमात्मा सब कुछ बन गया है," साथ ही पवित्र मन्त्र [जो स्वयं परमात्मा से अभिन्न हैं], दैव प्रेरित शास्त्र जैसे शिवसूत्र, तथा श्रीगुरु की सिखावनियाँ।

जब आप ऐक्य के इन विचारों में लीन हो जाते हैं तो समस्त वस्तुओं में जो ऐक्य है, उसके प्रति आपकी बुद्धि में एक दृढ़ *विश्वास* का उदय होता है। ऐक्य के इस दृष्टिकोण को धारण करने से बुद्धि परिष्कृत होती है ताकि वह सत्य के साथ समन्वय में आ सके। इस दृढ़ व नियमित अभ्यास के द्वारा बुद्धि सूक्ष्मतर होती ही है। यह ऐसा ही है मानो बुद्धि पारदर्शी हो गई हो, इतनी झीनी कि सभी को एकरूप बनाने वाला आत्मा का प्रकाश जो सदैव हमारे अन्दर विद्यमान है, वह जगमगा उठे व पूर्ण रूप से प्रकट हो सके।

इस संसार की भिन्नता के मूल में निहित एकता को पहचान पाने हेतु अपनी बुद्धि का उपयोग करने का एक श्रेष्ठ लाभ यह है कि ऐसा करना, अपने आपमें, हमें उस ऐक्य का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए तैयार करता है। इसकी एक झलक मुझे प्राप्त हुई थी जिसके बारे में मैं आपको बताना चाहता हूँ।

कई वर्ष पूर्व, मैंने सप्ताहभर चले एक कोर्स में भाग लिया था जो ऋषि क्षेमराज द्वारा लिखित सूत्रों के संग्रह, 'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' पर आधारित था — प्रत्यभिज्ञाहृदयम् [अभिज्ञान का सार] जिसका अर्थ है, परमोच्च सत्य के साथ हमारे ऐक्य का अभिज्ञान। स्वाभाविक है कि कोर्स का आरम्भ प्रथम सूत्र के साथ हुआ, जिसमें कहा गया है कि सम्पूर्ण विश्व जिसमें हमारी सत्ता का प्रत्येक पहलू सम्मिलित है, परम चिति में से उदित होता है व पुनः उसी परम चिति में विलीन हो जाता है।[६] बाकी के पूरे दिन मैंने इस पर मनन किया कि किस प्रकार चिति मेरे प्रत्येक कर्म, विचार व अनुभूति का स्रोत है।

अगली प्रातः, इस समझ को मैंने ध्यान में लागू किया। मैं आँखें बन्द करके बैठा था, मुझे यह अन्तर-दृष्टि मिली कि चूँकि मेरे मन के भीतर जो है, वह सब कुछ आख़िरकार चिति ही है, मुझे मन में उठ रहे विचारों, मनोवेगों अथवा इच्छाओं में आसक्त होने की आवश्यकता नहीं है।

एक घण्टे तक स्वयं को लगातार यह स्मरण कराने के पश्चात् कि मेरे विचार चिति में से उदित होते हैं, मैंने पाया कि मेरे विचार एक सूक्ष्म ऊर्जा में विलीन हो रहे हैं और मैंने अपने आप को एक ऐसी

अनुभूति से घिरे हुए पाया कि कुछ है जो प्रबल रूप से ऊपर की ओर गतिमान हो रहा है। मुझे अन्तर में एक दृष्टान्त हुआ जो पहले-पहल ऐसा लगा मानो सन्ध्याकालीन आकाश में कपास के गोलों के समान बादल छाए हों। फिर मेरा बोध तैरता हुआ इस आकाश की ओर ऊपर बढ़ने लगा जो अब मुझे एक महासागर की भाँति प्रतीत होने लगा। जो पहले मुझे बादलों के रूप में दिख रहे थे वे अब नीले-से रंग की ऊर्जा के भँवर बन गए थे और हर एक अपने ही तरीक़े से स्पन्दित हो रहा था। जब मैं इसके काफ़ी नज़दीक पहुँच गया, मैंने इस चमचमाते महासागर में डुबकी लगा दी, फिर तैरकर ऊपर आया और इसकी सतह को सराहने लगा — नृत्य करती लहरें और नील-श्वेत मण्डलों की तरंगों से बनी आकृतियाँ। सब कुछ चिति था।

मैं जान गया कि सब कुछ चिति ही है!

जब मैं ध्यान से बाहर आया, मेरी देह और मन, प्रेम व प्रशान्ति से सराबोर थे।

इस अनुभव से मैंने जो सीखा उसका एक अंश यह है कि सृष्टि के सच्चे स्वरूप की प्रतीति पाने व उसे पहचानने हेतु, बुद्धि को परिष्कृत कर, एक आध्यात्मिक साधक, सत्य के प्रत्यक्ष अनुभव के प्रति ग्रहणशीलता का विकास करता है।

अतः, प्रत्यक्ष ज्ञान, 'पौरुष ज्ञान', जिसका अनुभव हम ध्यान में करते हैं, तथा बौद्धिक ज्ञान, 'बौद्ध ज्ञान' जो हम श्रीगुरु व शास्त्रों की सिखावनियों के अध्ययन द्वारा प्राप्त करते हैं, पारस्परिक रूप से चलने वाले एक सुदृढ़ प्रतिक्रिया-चक्र का निर्माण करते हैं, एक प्रकार के कृपापूर्ण चक्र की रचना करते हैं जो सतत हमें अपने लक्ष्य के और भी समीप लाता जाता है।

यही कारण है कि सिद्धयोग के गुरुओं व शैव ऋषियों की सिखावनियाँ इस बात पर ज़ोर देती हैं कि बुद्धि को परिष्कृत करना तथा बौद्धिक ज्ञान का पोषण करना आत्मज्ञान पाने के लिए अनिवार्य है।

---

[१] शिवसूत्र ३.१२; भाषान्तर © एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन २०१८।

[२] शिवसूत्र ३.१२; ऋषि क्षेमराज द्वारा व्याख्या का भाषान्तर © एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन २०१८।

[३] शिवसूत्र ३.१२; ऋषि क्षेमराज द्वारा व्याख्या का भाषान्तर © एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन २०१८।

[४] स्वामी मुक्तानन्द, *Nothing Exists That Is Not Shiva* [साउथ फॉल्सबर्ग, न्यूयॉर्क : एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन, १९९७], पृ ४२।

[५] तन्त्रसार अध्याय ४; एच्. एन्. चक्रवर्ती, *Tantrasāra of Abhinavagupta* (Portland, Oregon: Rudra Press, 2012), पृ. ७०।

[६] प्रत्यभिज्ञाहृदयम् १; स्वामी शान्तानन्द, *The Splendor of Recognition* [साउथ फॉल्सबर्ग, न्यूयॉर्क : एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन, २००३], पृ २३।

©२०१९ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।